Chap-8

%%

अष्टम् अध्याय

प्रमुख कहानीकार और उनकी पारिवारिक जीवन दृष्टि

%%%

प्रथम अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि हिन्दी कहानी के पिछले तीस वर्षों में अनेक ऐसे मोड़ आये हैं; जिनका कारण प्रायः कहानीकारों की स्वयं को तथा अपनी कृतियों को आधुनिक व नया सिद्ध करने की लालसा माना जा सकता है । इस कारण हिन्दी कहानी में समय-समय पर अनेक उतार-चढ़ाव दिखायी दिये तथा कहानी को विभिन्न नामों से विभूषित किया गया । यह कहानी की गतिशीलता का परिचायक माना जा सकता है । नामकरण की बोधगत गतिशीलता के अनुरुप कहानी को वैज्ञानिक रुप से पृथक करना असम्भव ही है, क्योंकि प्रायः सभी कहानीकारों के अनुभव- संदर्भ अपने कालानुसार समान रहे हैं । अतः छठे दशक की कहानियों व कहानीकारों की जीवन दृष्टि में कोई सुस्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता; परन्तु सन् साठ के बाद सातवें दशक में यह अन्तर एक सीमा तक सुस्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

सन् साठ के बाद प्रायः रोमानी जीवन-दृष्टि को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया है । इन कहानियों में परम्परागत आदर्शवादी दृष्टिकोण व मानसिकता नहीं मिल पाती । इनके लेखकों को परम्परागत आस्थाओं के प्रति मोह नहीं रह गया है । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के अनेक कहानीकार नई-चेतना से ओत-प्रोत होते हुए भी परम्परागत आस्थाओं, संस्कारों के प्रति मोह का त्याग पूर्ण रुप से नहीं कर पाये । अतः किसे त्याग कर किसे अपनाया जाय इस द्वन्द्व से वे पूर्ण रुप से ग्रस्त लगते हैं । उनकी कहानियों में भी नये पुराने मूल्यों के संघर्ष का जो एक सीमा तक आकलन हुआ है, उसमें परम्परागत आस्थाओं का पलड़ा ही भारी दृष्टिगोचर होता है । सन् साठ के पश्चात् के कहानीकारों का व्यक्तित्व पहले से भिन्न तथा अपने युग के नितान्त अनुरुप माना जा सकता है । अतः वे उन नये मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील दृष्टिगोचर होते है; जिनका संघर्ष व विकास वे अपने युग के परिवेश के बीच देख रहे हैं ।

प्रथम अध्याय के विवेचन द्वारा यह भी लक्ष्य किया जा सकता है कि सन् साठ के बाद कहानीकारों की एक ऐसी मिश्रित पीढ़ी सामने आयी है जिसमें तीन कोटि के कहानीकार हैं । कुछ सन् पचास से पहले के हैं जो यथार्थोन्मुख आदर्श के सृजन के आग्रही रहे हैं । कुछ सन् पचास के बाद के हैं जिनके सृजन में यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए सूक्ष्म प्रयत्न दृष्टि-गोचर होता है । तीसरे नयी पीढ़ी के कहानीकार हैं जो सन् साठ के पश्चात की यथार्थवादी

प्रवृति से पूर्ण रुप से समृक्त हैं । यही कारण है कि सन् साठ के पहले के कहानीकार अपनी रचनाओं में सूक्ष्म प्रयत्नों द्वारा भावों व घटनाओं का संयोजन तो कर लेते हैं परन्तु सम - सामयिकता का बोध पूर्ण रुप से वहन नहीं कर पाते । सन् साठ के बाद के कहानीकारों की स्थिति इससे विपरीत है । अतः उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में प्रस्तुत अध्याय में केवल उन्हीं कहानीकारों की कहानियों में अंकित पारिवारिक जीवन-दृष्टि का विवेचन किया जा रहा है जिनके लेखन का अधिकांश भाग सन् 1960 ई. के बाद का है अथवा वे इसके पश्चात् ही कहानीकार के रुप में ख्याति प्राप्त कर सके हैं । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ कहानीकार ऐसे भी हैं जो समय के अनुसार अपने लेखन को एक सीमा तक परिवर्तित करचुके हैं । यद्यपि वे सन् साठ के पहले भी ख्याति प्राप्त कहानीकार रह चुके हैं परन्तु सन साठ के बाद भी उनकी कुछ कहानियों में वही चेतना और वही परिवेश पूर्ण रूप से चित्रित है जो सन् साठ के बाद के प्रमुख कहानीकारों की रचनाओं में है । इस सन्दर्भ में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कहानीकारों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ की जा रही है ।

1. मोहन राकेश :-

मोहन राकेश नई कहानी आन्दोलन के प्रमुख समर्थक तथा उत्कृष्ट कहानीकार रहे हैं । इनके 'इंसान के खंडर' (1950), 'नये बादल' (1957), 'जानवर और जानवर'((1958), ' एक और जिन्दगी ' (1961), 'फौलाद का आकाश' (1966), आदि संग्रह समय-समय पर प्रकाशित हो चुके हैं । आगे चल कर उन्होंने कहानियों की मूल संवेदना के आधार पर इनको चार संग्रहों 'आज के साये' (1967), 'एक-एक दुनिया' (1967), 'रोयें रेशे' (1968), ' मिले जुले चेहरे' (1969) में संकलित करके प्रकाशित किया । तत्पश्चात मेरी प्रिय कहानियाँ (1976) संग्रह सामने आया ।

मोहन राकेश की कहानी यात्रा का प्रथम पदन्यास 'मलबे का मालिक' (1956) कहानी से सामने आया जो 'एक और जिन्दगी' (1961) कहानी की भाँति दाम्पत्य सम्बन्धों में दरार बनाता हुआ 'ज़ख्म', 'सेफ्टीपिन', 'फौलाद का आकाश' (1966) कहानियों जैसे यौन कुंठाओं और विकृतियों से भरने लगा । इनकी पहले की कहानियों में जिस विराट मानवीय चेतना के दर्शन होते हैं बाद में वे अन्तर्मुखी चेतना में परिवर्तित हो जाती है ।

'अपरिचित', 'एक और जिन्दगी', 'मिसपाल', 'फौलाद का आकाश', 'जख्म', 'सेफ्टीपिन' इसी चेतना की बाद की कहानियाँ हैं । इनमें कहानियों की अनेक प्रवृत्तियाँ प्रतिलक्षित होती हैं । 'अपरिचित' में दो अपरिचितों का लगाव ही परिवार के पति-पत्नी, दूसरे शब्दों में परिचितों के मध्य अलगाव के सन्दर्भ में अत्याधिक मार्मिक स्थिति कही जा सकती है । इसमें पारिवारिक चेतना रहते हुए भी व्यक्तियों के मन में अलगाव की एक चिनगारी दिखायी देती है । ' एक और जिन्दगी ' कहानी में पति-पत्नी के मध्य अहं व वैयक्तिकता ने उनके व्यक्तित्वों में टकराव लाकर सम्बन्ध-विच्छेद करा दिया । इस कहानी में लेखक की यह जीवन दृष्टि विशेष रुप से उभर कर आयी है कि जीवन का बिखरना या बिखेरना जितना स्वाभाविक है, सँभलना या उसे समेटना उतना ही अस्वाभाविक । स्वाभाविक प्रक्रिया में जहाँ सब कुछ अनायास होता है, वहाँ अस्वाभाविक प्रक्रिया बहुत धैर्य और आयास की माँग करती है । उनके विचार में अस्वीकृति व असन्तोष भाव एक ऐसा कारण है जो परिवार के व्यक्तियों को बिखेरता या जोड़ता है । उक्त कारण की चुभन से ही व्यक्ति को अपने आसपास सब कुछ अधूरा लगता है । १.

यह ध्यातव्य है कि उपर्युक्त स्थितियाँ कहानी को आन्तरिक मार्मिकता प्रदान कर अत्यधिक जटिल बना देती हैं । 'फौलाद का आकाश', 'जख्म', 'सेफ्टीपिन' कहानियाँ यौन व्यापारों से स्वतन्त्र शारीरिक सम्बन्धों को पूर्ण रुप से चित्रित करती हैं । इन बदलती नैतिक मान्यताओं व यथार्थ के पूर्ण अंकन के कारण मोहन राकेश को साठोत्तर कहानीकारों के समकक्ष भी रखा जा सकता है । इनकी साठ के बाद की कहानियाँ अधिकांशतः पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित हैं जिनमें टूटते, बनते पारिवारिक सम्बन्ध एकाकी परिवारों, दाम्पत्य जीवन में बिखराव तथा नारी की वैयक्तिकता को अधिक महत्व मिला है ; जिससे ये कहानियाँ पारिवारिक जीवन के नये आयामों को अपने में समेटने के लिए सक्षम सिद्ध हो सकी है । पारिवारिक जीवन दृष्टि के सन्दर्भ में इन कहानियों पर यदि विचार किया जाय तो पहला उल्लेखनीय तथ्य पारिवारिक चेतना में उन्मुक्तता का है । स्थायी पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी दबाव पूर्ण सामंजस्य को स्वीकार नहीं करते । दूसरे तथ्य के रुप में वैयक्तिकता तथा उन्मुक्त यौन चेतना का समर्थन उन्होंने ' फौलाद का आकाश' कहानी में किया है, जहाँ वे पारिवारिक चेतना से विलग प्रतीत होते हैं । अन्ततोगत्वा वे अहसास करते हैं कि आज का परिवेश एक

सीमा तक पारिवारिक चेतना से विलग होता जा रहा है, जिसका कारण एक सीमा तक अर्थ का दबाव भी है । यही कारण है कि उन्होंने 'नये बादल, संग्रह की भूमिका में कहा है '' ... हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारी पीढ़ी ने यथार्थ के अपेक्षाकृत ठहरे हुए अर्थात वैयक्तिक और पारिवारिक रूप को अपनी रचनाओं में अधिक स्थान दिया है । निरन्तर कुलबुलाते और संघर्ष करते हुए सामाजिक पार्श्व का एक व्यापक भाग अछूता रहा है, जिसकी पहचान और पकड़ हमारे लेखकीय दायित्व का अंग है । ... '' [2] उनके नये दौर की ' परमात्मा का कुत्ता', 'ग्लास टैंक', 'जख्म', 'पाँचवे माले पर फ्लैट, आदि कहानियों में उस अकेलेपन की अभिव्यक्ति है, जो समाज के मध्य है । वे व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी, एक दूसरे से भिन्न तथा आपस में कटी हुई इकाइयाँ न मान कर एक ऐसी अभिन्नता में देखने का प्रयत्न करते हैं जहाँ व्यक्ति समाज की विडम्बना का तथा समाज व्यक्ति की यंत्रणाओं का दर्पण मात्र है ।

मोहन राकेश की निजी सामाजिक दृष्टि तथा उनकी कहानियों में अभिव्यक्त होने वाली जीवन दृष्टि के तुलनात्मक आकलन के आधार पर इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि वे आज पारिवारिक जीवन के बिखराव या विघटन को एक स्वाभाविक प्रक्रिया स्वीकार करते हैं । यह प्रक्रियां संयुक्त परिवारों में ही नहीं अपितु एकाकी परिवारों में भी वे लक्ष्य कराते हैं । इस बिखराव और पारिवारिक जीवन के नये आयामों के विकास के तीन कारण उनकी कृतियों में दृष्टिगत होते हैं - प्रथम आर्थिक दबाव, द्वितीय वैयक्तिकता तथा तीसरे यौन चेतना । वैयक्तिक और पारिवारिक अस्तित्व में अन्तः संघर्ष को ही वे एक ओर पारिवारिक जीवन का मुख्य तथ्य मानते हैं तो दूसरी ओर व्यक्ति का अकेलापन आज के पारिवारिक जीवन में निर्दिष्ट करते हैं । अंतः स्पष्ट है कि वे पारिवारिक चेतना को वैयक्तिकता के सामनेस्वीकार नहीं करते हैं ।

2. राजेन्द्र यादव :-

राजेन्द्र यादव के 'देवताओं की मूर्तियाँ '(1952), 'अभिमन्यु की हत्या'(1959) 'किनारे से किनारे तक' (1963), ' खेल खिलौने ,(1964), ' टूटना,' तथा अन्य कहानियाँ (1966)' 'अपने पार'(1968), 'जहाँ लक्ष्मी कैद है'(1971), मेरी प्रिय

कहानियाँ'(1976), 'ढोल तथा अन्य कहानियाँ' (1972), 'घर की तलाश'(1978) आदि उल्लेखनीय संग्रह हैं ।

राजेन्द्र यादव का कहानी लेखन मध्यम वर्ग के यथार्थ से अधिक सम्बन्धित है । उनकी प्रारम्भिक संवेदना व चेतना अनेक विरोधों तथा प्रभावों के साथ-साथ प्रेमचन्दीय कही जा सकती है । वे सन् 1950 से 60 ई. के मध्य अच्छे कहानीकार माने गये । सन् साठ के पश्चात् उनकी अनेक कहानियों में परिवेश के अनुकूल परिवर्तन आया है और यह परिवर्तन इतना गहरा है कि उनकी जीवन दृष्टि इस परिवर्तन से सम्पृक्त दृष्टिगोचर होती है । इन्होंने पुरानी तथा नयी पीढ़ी का संघर्ष 'बिरादरी बाहर' कहानी में पूर्ण रुप से चित्रित किया है जहाँ पुरानी पीढ़ी इतनी आघातग्रस्त दिखायी गई है कि वह नयी पीढ़ी को अपना मुँह भी नहीं दिखाना चाहती । उसे स्वयं को अपने बन्धन व्यर्थ लगने लगे हैं और वे परिवार की परम्पराएँ तोड़ कर नये रीति-रिवाज प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह की स्थापना करते हैं । प्रत्येक परम्परागत बन्धन को एक सीमा तक अस्वीकार करना उनकी कहानियों में चित्रित है । उनका विचार है कि जिस स्वतन्त्र जीवन की लालसा को मन में एकान्त निष्ठा से लगातार सँवारा है उसे यों ही किसी अयोग्य के हाथ या परम्परागत रुढ़ियों के मध्य क्यों छोड़ दिया जाए । इसके सन्दर्भ में उनका यह कथन प्रासंगिक ही कहा जा सकता है ''... यह सत्य है कि हर युग में वर्तमान नैतिक मान्यताओं को शाश्वत तो माना ही है, सर्वश्रेष्ठ भी माना है । साथ ही यह भी सत्य है कि हर युग की नैतिकता अलग रही है और उसने अपने से पहले युग की नैतिकता को निर्ममता से अस्वीकार कर दिया है । हमारी आज की नैतिकता हमारे द्वारा सबसे अच्छी मानी जाते हुए भी सदा की नैतिकता नहीं है । भौतिक जगत के बदलते मूल्यों में यह नैतिकता बड़े भयंकर संकट और संक्रान्ति में है । यह इस बात से साफ है कि एक सामाजिक स्वीकृति या खोल की तरह हम इसे खींच-खाँच कर चढ़ाये हुए हैं वरना मन ही मन इसके कण-कण से हमारा विश्वास उठ चुका है । [3]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि राजेन्द्र यादव युगीन मान्यताओं, स्वीकृतियों एवं साथ ही नैतिकता को शाश्वत या चिरस्थायी नहीं मानते । अतः पूर्व युगीन नैतिकता के प्रति उनके विद्रोह की मनोवृत्ति स्वयं सिद्ध है । एक प्रकार से देखा जाय तो अपने युग की

स्वीकृति के स्थान पर अस्वीकृति का पक्ष उनकी कहानियों में अधिक उभर कर आया है जिसे कतिपय कहानियों के माध्यम से लक्ष्य किया जा सकता है । पति-पत्नी के सम्बन्धों के बिखराव का कारण अहं वैयक्तिकता तथा संस्कार जन्य भिन्नता को 'टूटना' कहानी में लक्ष्य किया गया है :. जिससे स्पष्ट है कि संस्कारगत भिन्नता, पारिवारिक असामंजस्य की स्थिति, वैयक्तिकता के वातावरण में परिवार को टूट ही जाना चाहिए । वे इन परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करते दृष्टिगोचर नहीं होते । इस बात की पुष्टि वे ' अंगारो के खेल' कहानी में करते हैं जहाँ माता-पिता धन-वैभव देख कर पुत्री- हेम का विवाह अधिक आयु वाले व्यक्ति से करना चाहते है जिसका एक अशिक्षित लड़की से सम्बन्ध विच्छेद हो चुका है । लेखक हेम से विरोध करने के लिए कहता है उसकी असमर्थता में लेखक स्वयं आगे आता है किन्तु कुछ सामाजिक समस्याओं की विवशताओं में हेम पिता के समक्ष विवाह की स्वीकृति दे देती है । 'टूटना' कहानी के अन्त में लीना भी विवश होकर टूटे सम्बन्ध पुनः जोड़ना चाहती है । इस प्रकार की विवशताओं और समस्याओं के विषय में राजेन्द्र यादव के विचार हैं '' ''' यह रोटी की समस्या, जीवित रहने की समस्या, युद्ध और शांति की समस्या, ये सब अकेले-अकेले ही निपटने की चीजें हैं ? आदमी की जीवनी शक्ति को सबसे अधिक तोड़ती है ये धर्म और धन की दीवारें, रुढ़ियाँ, संस्कार झूठे नैतिक ढकोसले, जिनके पीछे एक मरती हुई आर्थिक अवस्था है.''' '' 4. अतः इन्हीं समस्याओं से विवश होकर कुछ कहानियों में पारिवारिक चेतना का सहारा लिया गया है । खेल-खिलौने', 'टूटना' संग्रहों की अधिकांश कहानियाँ इन्हीं स्थितियों का द्योतन करती हैं ।

वे नैतिकता का कोई सामाजिक बन्धन स्वीकार नहीं करना चाहते यही कारण है 'जहाँ लक्ष्मी कैद है ' कहानी संग्रह की कहानियों में इस मूल्य का विघटन चित्रित हैं । इसे लेखक ने इस प्रकार तर्क द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है '' ''' वास्तव में इससे बड़ा अत्याचार और क्या होगा कि आठों पहर भावनाओं के सागर में डूब कर कला के मोती लाने वाले से माँग की जाय कि वह कमल के पत्ते की तरह निर्लिप्त रहे । नारी शरीर के सौन्दर्य को, मूर्ति और चित्र दारा प्रस्तुत करने वाले, नारी के हृदय की मधुरतम भावनाओं में डूब कर साहित्य-रचना करने वाले से माँग की जाय कि नारी शरीर देखना ही तुम्हारी अनैतिकता है । '' 5.

यौन सम्बन्धों की स्वतन्त्रता में ही कहीं-कहीं काम-अतृप्ति- जन्य विकृतियों का वर्णन

भी इनकी कहानियों में मिलता है । 'प्रतीक्षा' कहानी की गीता व नन्दा भी इसी के परिणाम स्वरुप समलैंगिक सम्बन्ध स्वीकार करती हैं । अतः स्पष्ट है कि ये पारिवारिक चेतना के स्थान पर उन्मुक्त यौन-चेतना को प्रमुखता देते हैं । यह साठोत्तर काल के परिवेश की भी एक विशेषता कही जा सकती है । अन्त में इनकी पारिवारिक जीवन दृष्टि के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि उनकी नई कहानियों में पारिवारिक चेतना को यथेष्ठ स्थान न मिल कर युग की यथार्थ चेतना को ही स्थान मिला है । स्पष्टतः उनकी पारिवारिक जीवन दृष्टि के किसी भी पक्ष पर उनके माध्यम से प्रकाश नहीं पड़ता ।

3. उषा प्रियम्बदा :-

उषा प्रियम्बदा का अधिकांश लेखन शिक्षित, स्वच्छन्द, सफल नारी के चरित्र का द्योतन करता है । साथ ही आज के आधुनिक परिवेश में मध्यवर्गीय परिवार अनेक समस्याओं का सामना करते हुए किन स्थितियों से गुजर रहा है, उसकी मान्यताओं में शनैः शनैः कितना परिवर्तन आता रहा है परम्परागत उच्च मर्यादाएँ व मूल्य विषमताओं तथा विकृतियों के कारण खंडित होते जा रहे हैं आदि का यथार्थ चित्रण इन्होंने अपनी कहानियों में किया है । इन्होंने अपनी बाद की कहानियों में बदलते परिवेश में पति-पत्नी के सम्बन्ध, तथा विदेशी परिवेश को भी अंकित किया है । इनके ' जिन्दगी और गुलाब के फूल,' (1961), 'एक कोई दूसरा'(1966), 'कितना बड़ा झूठ'(1972), प्रमुख कहानी संग्रह हैं, तथा 'वापसी', 'कोई नहीं' 'खुले हुए दरवाजे', ' जिन्दगी और गुलाब के फूल' , कितना बड़ा झूठ,' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं ।

इनकी कहानियों में नारी की अछूती भावनाओं व मनः स्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है । ऐसी कहानियाँ मानवीयता व करुणा के स्वरों से ओतप्रोत हैं फिर भी उन्होंने कलात्मकता के साथ अनेक नारी मन की दुर्बलताओं व कमियों को उभारा है । नारी मन के अनेक वर्जित सत्यों का रहस्य भी इसी कारण खुला है । 'मछलियाँ', 'पिघलती हुई बर्फ', सागर पार का संगीत' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं । 'मछलियाँ' कहानी में इन्होंने नारी मन के दौर्बल्य को ऐसी कलात्मक सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है जिसमें नारी सुशिक्षित होने पर प्रेम की स्वच्छन्दता में परिवार को छोड़ कर अपने प्रेमी से मिलने के लिए वाशिंगटन पहुँच जाती है और वहाँ भी ईर्ष्या के कारण नटराजन के पारिवारिक जीवन के आरम्भ को छिन्न कर देती है । उसकी असफलता दिखा कर भी उषा प्रियम्बदा शिक्षित नारी के अहं,

वैयक्तिकता तथा स्वतन्त्र अस्तित्व को मानकर उसे पूर्ण रुप से स्वीकार करती हैं . किन्तु पारिवारिक जीवन के सामंजस्य का मुकी के चरित्र के माध्यम से समर्थन करती हैं । 'कच्चे धागे', 'छुटटी का दिन', 'जाले' कहानियों में आर्थिक संकट से आक्रान्त नारी दिखाई है
का पोषण करती है। इससे लेखिका की संतुलित पारिवारिक
जो भावुक होने पर अविवाहित ही रह जाती है और अपने परिवार/ जीवन दृष्टि को पुष्टि मिलती है । वे पारिवारिक चेतना को एक सीमा तक ही स्वीकार कर पाती हैं अन्यथा 'वापसी' कहानी की भाँति परम्परागत मान्यता को मानने वाला व्यक्ति अथवा परिवार बिखर जाता है । वे परम्परागत मूल्यों का अस्तित्व आज के परिवेश में गजाधर बाबू तथा उनकी चारपाई की भाँति ही व्यर्थ और तुच्छ मानती हैं जिसके लिए नयी पीढ़ी व परिवेश में आदर, सम्मान तथा स्थान नहीं है । यहाँ तक कि परिवेश के अनुसार अपने व्यक्तित्व को ढालना, सामंजस्य करना ही उनकी पारिवारिक दृष्टि है । जो अपने युग व परिवेश से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता वह मिसफिट हो जाता है । उसे वापस जाना पड़ता है । परिवार से यह वापसी मात्र गजाधर बाबू की ही न होकर समस्त पुराने मूल्यों की वापसी कही जा सकती है जो उन्हें नई दिशा की ओर चलने का आग्रह भरा प्रस्ताव रखती है ।

नारी के अर्थार्जन से पुरुष का अवमूल्यन एक सीमा तक हो सका है 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', ' दृष्टिदोष', 'मोहबन्धन' आदि कहानियों में यही स्थिति अंकित की है । उषा प्रियम्बदा पुरुष के एक छत्र शासन को अस्वीकार कर उसके स्वामित्व को तब तक ही महत्व देती हैं जब तक नारी का अस्तित्व भी बरकरार रह सके । पुरुष के अस्तित्व में नारी के अस्तित्व का विलीन हो जाना या नारी का पुरुष के प्रति समर्पित होना जैसी मान्यताओं की वे आग्रही नहीं दिखायी देती । उनका मानना है कि नारी-पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता है । 'पूर्ति' कहानी में यही स्थिति अंकित करने का प्रयत्न किया गया है । अन्यथा नारी सम्पन्न, सुखी तथा स्वतन्त्र होते हुए भी अकेलेपन से पीड़ित हो सकती है । इससे स्पष्ट है कि एक सुगठित परिवार के अस्तित्व के लिए वे पति और पत्नी के समान महत्व तथा सम्बन्धों में एक-दूसरे की पूरकता के तत्व को मान्यता देती हैं । 'एक और विदाई' कहानी में यह जीवन दृष्टि दूसरे ढंग से प्रस्तुत हुई है । इसमें नारी पुरुष के स्वामित्व के प्रति वैयक्तिक चेतना के कारण विद्रोह करती है किन्तु स्वामित्व

के अभाव में वह अकेलेपन का भी अनुभव करती है । उसे अकेलापन खलता है जिससे वह पुरुष के स्वामित्व को पुनः स्वीकार करना चाहती है । यहाँ लेखिका पारिवारिक जीवन के सम्यक् निर्वाह के लिए नारी के समझौते पूर्ण रवैये को वांछनीय भी मानती है । इस प्रकार ऐसी कहानियों में पारिवारिक जीवन की बिखराव और समन्वय दोनों के आधारों का विश्लेषण है ।

उषा प्रियम्बदा ने अपनी कहानियों में भारतीय, विदेशी संस्कृति का द्वन्द्व तथा समन्वय कराने का प्रयत्न किया है । 'चाँदनी' में वर्फ पर' शीर्षक कहानी में दो प्रेमी युगलों को प्रस्तुत करके भारतीय नारी की अपने पति के प्रतिसन्निष्ठ मानसिकता तथा विदेशी पत्नी के अन्य पुरुषों के एकान्तिक सम्बन्धों को दिखाकर सामंजस्यपूर्ण एवं संतुलित पारिवारिक जीवन दृष्टि को प्रकाशित किया गया है । इस कहानी में भारतीय पति की विवाह पूर्व की प्रेमिका जब विवाहित होकर विदेश जाती है तब अपने पुराने प्रेमी से एकान्त में मिलने का प्रस्ताव ठुकरा देती है जबकि विदेशी पत्नी दूसरे युवकों के एकान्त में मिलने के प्रस्ताव स्वीकार करती रहती है । विवाहोत्तर सम्बन्धों की असफलता भी अनेक बार दाम्पत्य सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाती है । 'कितना बड़ा झूठ' कहानी में किरन पारिवारिक मर्यादा को तोड़ कर अपने प्रेमी मैक्स से मिलने का प्रोग्राम बनाती है किन्तु उसके अन्यत्र सम्बन्धों को जानकर अपनी पुरानी पारिवारिक मर्यादा में आ जाती है । किन्तु 'स्वीकृति' कहानी की जपा पारिवारिक जीवन के सामंजस्यपूर्ण निर्वाह के लिए अपने पति के विश्वास सम्पादन के लिए निरन्तर यत्नशील रहती है । ठीक यही तथ्य 'सागर पार का संगीत' कहानी में भी उजागर होता है । अतः यह कहा जा सकता है कि उसमें ऐसी यथार्थ स्थिति का बोध कराया गया है जिसमें वैयक्तिकता को स्वीकार करके भी पारिवारिक जीवन के सामंजस्य के लिए उसमें नियन्त्रण को आवश्यक माना गया है ।

अतः स्पष्ट है कि उषा प्रियम्बदा की कहानियों में पर पुरुष की गंध तथा प्रेम की तीव्र अनुभूति मिलती है परन्तु वे वासना के वेग, अथवा शारीरिक पूर्ति के लिए अधिक स्वच्छन्द या सक्रिय दिखायी नहीं देती । अन्त में कहा जा सकता है कि वे भारतीय परम्परागत परिवारों का तो पूर्ण खंडन करती हैं परन्तु एकाकी परिवारों के अस्तित्व की आग्रही हैं । किन्हीं कारणों से दाम्पत्य सम्बन्धों में बिखराव आ जाने पर भी कहानियों में वे मन से उस

टूटन को स्वीकार न करके जो कहीं न कहीं से परिवार के प्रति चेतना तथा अस्तित्व धारण कराने के अवसर खोजने के लिए लालायित रहती हैं ।

4. मन्नू भंडारी :-

मन्नूभंडारी ने अधिकांशतः नारी जीवन को केन्द्र बना कर कहानियाँ लिखी हैं । इनकी नारी केवल देवी या दानवी के रुपों में व्याप्त न होकर एक यथार्थ परिवेश में जीने वाली मानवी नारी के रुप में मिलती है । आधुनिक परिवेश में आने वाले अनेक परिवर्तनों का चित्रण मन्नू भंडारी की कहानियों में मिलता है । इनके 'ईशा के घर ईसान ' 'मै हार गयी' (1957), 'तीन निगाहों की एक तस्वीर'(1959), ' यही सच है'(1965), 'एक प्लेट सैलाब'(1968), 'श्रेष्ठ कहानियाँ'(1969), ' मेरी प्रिय कहानियाँ' (1973) आदि प्रमुख कहानी संग्रह हैं ।

मन्नू भंडारी की कहानियों में प्रायः आधुनिक मध्यवर्गीय जीवन का सत्य अंकित हुआ है । आज के जीवन में व्यक्ति की क्या दशा रहती है इसका वर्णन उन्होंने ' बन्द दराजों का साथ ' कहानी में करने का प्रयत्न किया है जिससे उनकी विचार धारा का भी संकेत मिलता है । ''... आज जिन्दगी का हर पहलू, हर स्थिति और सम्बन्ध एक समाधान हीन समस्या होकर आता है ; जिसे सुलझाया नहीं जा सकता, केवल भोगा जा सकता है , जिसमें आदमी निरन्तर बिखरता और टूटता चला जाता है । ... इसी टूटन तथा घुटन से मुक्ति पाने के लिए नारी प्रयत्नशील है, जहाँ उसे प्रयत्न करते हुए... सम्बन्धों को मरी हुयी खाल की तरह नोंच फेंकने में भी संकोच नहीं होता... '' । अतः वे परम्परागत मूल्य व आदर्शों को त्याग कर नये सम्बन्धों या नयी मानसिकता को एक सीमा तक स्वीकार करती हैं । यही कारण है कि मन्नू भंडारी ने पारिवारिक जीवन की विविध समस्याओं को तथा नर-नारी के सम्बन्धों को विभिन्न दृष्टिकोणों व आयामों से अपनी कहानियों में रुपायित किया है ।

उपर्युक्त दृष्टिकोण का वहन करने वाली कहानियों में प्रेम तथा दाम्पत्य जीवन को उन्होंने साहस एवं निर्भीकता से चित्रित करने का प्रयास किया है । एक ओर नारी अपने ही घर में अपने को आउट साइडर या मिसफिट अनुभव करती है तो दूसरी ओर पर-पुरुष से सम्बन्ध रखने पर भी अपने दाम्पत्य सम्बन्धों की पवित्रता का दावा करती है । इन कहानियों की नारी तर्क देती है कि यदि सम्बन्धों का आधार छिछला हो एक झटके को सहन कर सके तब उसे टूट ही जाना चाहिए । 'ऊँचाई' कहानी इसी तर्क के आधार

पर लिखी गई है । आधुनिक जीवन बोध तथा प्रेम को नई व्याख्या देकर 'यही सच है' कहानी का सूत्रपात किया गया है । जहाँ प्रेम क्षण की अनुभूति पर आधारित है । इसकी पुष्टि भी वे स्वयं इस प्रकार करती हैं ''... किसी एक क्षेत्र को चुनने पर उसके लिए जैसा एकनिष्ठ समर्पण चाहिए वह मेरे बस का नहीं । न तो मैं पूरी तरह समर्पित पत्नी बन सकती हूँ, न त्यागमयी माँ, न निष्ठावान लेखिका, और न परिश्रमी गृहिणी । सब कुछ मिला जुला बनारहे , उसी में मेरी खैरियत है, उसी में निस्तार...'' 6.

'यही सच है ' तथा 'तीसरा आदमी ' कहानियों में वे प्रेम में उन्मुक्तता की आकांक्षिणी दृष्टिगोचर होती है । उन्मुक्त प्रेम तथा विवाह पर उन्होंने विचार व्यक्त करते समय कहा है ''... इस सम्बन्ध में कोई नियम तो नहीं बनाया जा सकता , पर मैं यह जरुर सोचती हूँ कि जो लोग मुक्त प्रेम में विश्वास करते हैं , उन्हे विवाह का बंधन स्वीकार ही नहीं करना चाहिए और यदि कोई विवाह करे तो उसे अपने साथी के प्रति ईमानदार रहना चाहिए ...'' 7.

पारिवारिक जीवन दृष्टि के सन्दर्भ में लेखिका का उपयुक्त वक्तव्य उनकी पारिवारिक जीवन दृष्टि का परिचायक कहा जा सकता है । वे पारिवारिक जीवन के बीच पति-पत्नी की ईमानदारी तथा मर्यादा की हिमायती हैं, किन्तु साथ ही परिवार के बंधन में न पड़ने वालों को यौन-चेतना संबन्धों की स्वतन्त्रता भी देना चाहती हैं । विवाह के पश्चात साथी के प्रति ईमानदारी निभाने के उद्देश्य से ही 'त्रिशंकु' कहानी का सृजन हुआ प्रतीत होता है जिसकी 'मम्मी' कभी परम्परागत आस्थाओं को स्वीकार करती 'नाना' बन जाती है और पुत्री के स्वच्छन्द सम्बन्धों पर बन्धन लगाती है तो कभी उन्मुक्त प्रेम व स्वतन्त्रता में विश्वास करके सिर्फ 'मम्मी' बन जाती है जो युवा लड़की पर किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं लगाती ।

इन सभी का परिणाम है कि मन्नू भंडारी की कहानियाँ नर-नारी द्वंद्वों से परिपूर्ण दृष्टिगोचर होती हैं 'नकली हीरे', 'कमरे-कमरा-कमरे', इन्ही स्थितियों की कहानियाँ है । मन्नू भंडारी की अनेक कहानियों में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण दिखाई देता है जिसके विषय बोध की प्रामाणिकता तथा परिवेश और व्यक्ति के निरन्तर परिवर्तन को कहानियों में प्रतिलक्षित किया गया है । मन्नू भंडारी कहानियों में पारिवारिक

जीवन दृष्टि की ओर जब तक आग्रही है तब तक नारी का अस्तित्व स्वतन्त्र रह सके परन्तु बदलते परिवेश में अनेक कुंठाओं का बनना होता है तब उनकी पारिवारिक चेतना गम्भीर व दयनीय अवस्था में रहती है इस सन्दर्भ में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि '' कुंठा, घुटन, तनाव और संत्रास की स्थितियाँ जो आज के साहित्य का केन्द्र बिन्दु है हमारे समाज की उपज नहीं वरन विदेशों से आयातित हैं । हमने इन्हे अपने ऊपर आरोपित कर लिया है । भारतीय परिवार आज भी मानसिक या भावनात्मक स्तर पर संयुक्त परिवार ही है अतः हम उस अकेलेपन से भयभीत नहीं हैं जो विदेशों में व्याप्त है ...'' । 8. यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पूर्ण परम्परागत पारिवारिक चेतना भले ही मन्नू भंडारी की पहले की कहानियों में रही हो परन्तु नयी कहानियों में यह एक सीमित रुप में ही मिल पाती है ।

इनकी कुछ नगर बोध की कहानियों का आधार मानसिक अथवा आर्थिक समस्या पर आधारित रहता है । मानसिक दृष्टि से 'अकेली', 'एक बात और ' कहानियों की भाँति उनमें अतृप्ति तथा उपेक्षा का भाव ही अधिक रहता है, जबकि आर्थिक रुप से संघर्ष को चित्रित करने वाली कहानियों में व्यक्ति एक ओर विघटित होता है तो दूसरी ओर उसका दृष्टिकोण भी बदलने लगा है । 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'खोटे सिक्के' 'क्षय' इन्ही स्थितियों को समर्थन देती कहानियाँ हैं । मानवीय सम्बन्धों के विघटन के मूल कारण में आर्थिक समस्या की चरमस्थिति 'शायद' कहानी में मिलती है । इसमें पत्नी घर से दूर समुद्री जहाज पर नौकरी करने वाले पति को एक प्रकार से उपेक्षित कर देती हैं और अपने पड़ोसी को अपना सम्बन्धी मानने लगती है । उसका विचार है कि यही व्यक्ति उसके पति की अनुपस्थिति में उसकी आर्थिक सहायता करता है अन्यथा बच्चों के साथ जीवन-यापन करना उसके लिए असम्भव हो सकता है । पड़ोसी के साथ उसके सम्बन्ध बढ़ते जाते हैं । यहाँ तक कि वह पड़ोसी को घर का मुख्य व्यक्ति मानने लगती हैं और बेटी के विवाह के निर्णय में पति से अधिक पड़ोसी को महत्व देती है । इनकी कुछ कहानियाँ पुरुषों की नारी के प्रति भोगवादी या पारम्परिक दृष्टि का संकेत देती हैं परन्तु दूसरी ओर अनेक नारियाँ अपनी विवशताओं के मध्य अनिश्चय पूर्ण जीवन जीती हैं उन्हें अपनी जिन्दगी ठीक से जीने की असमर्थता का संत्रास सालता रहता है । 'क्षय', 'अकेली',

'मजबूरी' में यही संत्रास उभर कर आया है । इस सन्दर्भ में मन्नू भंडारी का विचार है कि ''... हमारे यहाँ सामाजिक संस्कारों और रुढ़ियों से उबरने की, या फिर दहेज, जाति, आर्थिक परतंत्रता, शील सुरक्षा, सतीत्व या 'भारतीय नारी' का बहु प्रचारित शिकंजा और भी ऐसी अनेक रुकावटें हैं जो हमें खुला आसमान देखने नहीं देती...'' 9.

इसी स्थिति का एक दूसरा पहलू ' नयी नौकरी ' कहानी में मिलता है, जहाँ पुरुष की भौतिक वादी दृष्टि अपनी स्वार्थ की पूर्ति के लिए आतुर हो जाती है । कुंदन की नयी नौकरी है वह भौतिक समृद्धि की लालसा में अपने बॉस को प्रसन्न करने की भावना से पत्नी के अस्तित्व का गला घोंट देता है । इस प्रकार की कहानियों से लगता है परम्परागत पारिवारिक चेतना अधिक प्रबल है जहाँ परिवार में पुरुषों के अस्तित्व को स्वामित्व तथा नारी के अस्तित्व को दासी का रुप मिला है । अतः स्पष्ट है कि इनकी कहानियों में नारी संस्कारों, भावनाओं, संवेदनाओं के साथ बाहरी स्थितियों को झेलती है और कभी-कभी स्वंय उसके सामने टूट जाती है । 'नशा', 'चश्मे' कहानियों में नारी परिवार के लिए स्वयं के अस्तित्व को मिटाने पर विवश हो जाती है । अन्ततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी की कुछ कहानियाँ बदलते परिवेश के अनुभवों से सम्पृक्त होकर पारिवारिक चेतना से दूर जा पड़ी हैं अन्यथा अनेके कहानियाँ पारिवारिक चेतना को एक सीमा तक स्वीकार करती है ।

समग्रतया देखने पर यह कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी का दृष्टिकोण प्रायः

पारिवारिक चेतना का रहा है ; जिसमें पूर्वाग्रह के स्थान पर तटस्थ दृष्टिकोण से परम्परा की स्वीकृति या अस्वीकृति को मान्यता प्राप्त होती है उन्होंने इसे स्वयं स्वीकार किया है ''... क्या आधुनिकता का तकाजा नहीं कि हम समस्याओं और स्थितियों के हर पक्ष को पूर्वाग्रहों से मुक्त हो कर, बहुत तटस्थ और 'रेशनल' दृष्टि से देखें और परखें ? सच पूछें तो मेरे लिए जिस तरह बिना जाँच परख के रुढ़ियों को स्वीकार करना अन्ध विश्वास है, उसी तरह आँख मूँद कर सब कुछ अस्वीकार भी उतना ही बड़ा अन्धविश्वास है...'' 10. अतः कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी की कहानियाँ जीवन के सत्य व संवेदनाओं के साथ पारिवारिक जीवन की विविध समस्याओं, सम्बन्धों को अनेक दृष्टिकोणों के साथ चित्रित करती है जहाँ कहीं-कहीं सामाजिक जीवन के प्रश्नों को भी प्रकाश मिलता है । उनकी जीवन दृष्टि हमें समाज जीवन के व्यापक फलक पर आलोकितहुई कही जा सकती है । वे विकृतियों के विविध पक्षों को तटस्थ भाव से रखती, पारिवारिक विकृतियों का विश्लेषण करतीं तथा पारिवारिक सम्बन्धों में सामंजस्य को भी महत्व देती हैं । नर-नारी के बहु-आयामी सम्बन्धों में वे यथार्थपरक दृष्टि अपना कर संतुलन की चेतना को नहीं छोड़ती । अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी की जीवन दृष्टि युगानुरुप एवं व्यावहारिक है और वह आधुनिकता के उत्साह में प्रत्येक परम्परा की उपेक्षा भी नहीं करती ।

5. महीप सिंह :

डॉ0 महीप सिंह सचेतन कहानी आन्दोलन के प्रमुख कहानीकार हैं, जिन्होंने कहानी को एक ऐसी सचेतन दृष्टि दी है जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। परिवेश की टूटती बिखरती मान्यताओं के मध्य इन्होंने जन-जीवन की व्यापक पारिवारिक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है। इनके समय-समय पर प्रकाशित 'सुबह के फूल 1959), उजाले के उल्लू' (1964), 'घिराव' (1968), 'कुछ और कितना' (1973), मेरी प्रिय कहानियाँ (1973) आदि संग्रह उल्लेखनीय हैं। डॉ0 महीप सिंह ने इन सभी संग्रहों की प्रमुख कहानियों को 'इक्यावन कहानियाँ' (1982) संग्रह में संकलित करने का प्रयास किया है। इस संग्रह में कहानी के अन्त में लेखन का वर्ष भी दिया गया है जिससे कहानीकार की कथा-यात्रा रेखांकित होती है। यह यात्रा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' पत्रिका द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में पुरस्कृत 'उलझन' (1956) कहानी से प्रारंभ हुई है। संग्रह के अन्त में सारिका- 1 दिसम्बर-1980 में प्रकाशित 'सहमे हुए' कहानी है।

यह निर्विवाद सत्य है कि आलोच्य काल में अपेक्षाकृत यौन स्वच्छंदता तथा अश्लीलता से भरी कहानियाँ अधिक मिलती हैं परन्तु महीप सिंह की कहानियाँ यौन सम्बंधों पर आधारित होते हुए भी नितान्त देह -भूख या अकहानी के यौन संसार से एकदम भिन्न हैं। यौन-चेतना को इन्होंने उन्मुक्तता के स्थान पर एक ऐसे सामाजिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है जिसमें व्यक्ति के अनेक व्यवहार मर्यादा में रह कर लक्ष्य हुए हैं।

यही कारण है कि ये कहानियाँ सामाजिक मर्यादा के भीतर जीवन के अनेक विध सत्यों की अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर सकी हैं। इनकी अधिकांश कहानियों का सम्बन्ध ऐसी मानसिक व्यथा से रहता है जहाँ सम्बंधों की जटिलता में व्यक्ति किसी अन्य वस्तु को महत्व नहीं दे पाता। एक ओर प्रेम तो दूसरी ओर व्यवस्थित जीवन का संस्कारगत बन्धन। इसमें व्यक्ति अपनी जिन्दगी को ढोता हुआ अथवा घसीटता हुआ चलता है तथा स्थिति सहज रहते हुए भी जटिल रहती है। 'कुछ होने को है' का डर सदैव रहता है और कहीं-कहीं यही स्थिति जटिल होकर भी सहज रहती है। 'सीधी रेखाओं के वृत्त' कहानी की सवि इसी मानसिक स्थिति से आक्रान्त है। वह अवसर पाने पर कहती है----तुमने मुझे कुचला था, दुत्कारा था, अपमानित किया था। तुम समझते हो, तुम बड़े महान हो। तुम किसी के साथ कैसा भी व्यवहार कर सकते हो। सब लोग तुम्हारे जर खरीद गुलाम हैं। तुम समझते हो, मैं अभी भी तुम्हारे पीछे उसी तरह दुम हिलाती हुई घूम रही हूँ। तुम्हारी कही हर बात को भगवान का वचन मान कर सिर माथे चढ़ाए फिर रही हूँ।'[11] नारी की यही वैयक्तिकता तथा पुरुषों की दासता का विरोध 'लोग' कहानी में भी मिलता है। अंतिम दोनों कहानियों में नारी की स्वतंत्रता तथा वैयक्तिकता के यथार्थ परिणामों को प्रस्तुत करके एक प्रकार से पारिवारिक जीवन के बिखराव के कारणों का उद्घाटन किया गया है। 'और-और वृत्त', 'घिरे हुए क्षण', तथा 'घिराव' आदि कहानियाँ जीवन के यथार्थों को एक पृथक आयाम के रूप में प्रदर्शित करती हैं। इन कहानियों में स्त्री और पुरुष की स्वच्छन्दता तो चित्रित की गयी है किन्तु उसके खुल जाने के भय से आक्रान्त भी है। अतः यह कहा जा सकता है स्वतंत्र यौन-सम्बंधों के आकांक्षी होकर भी वे पारिवारिक जीवन में बिखराव नहीं लाना चाहते। इससे लेखक की जो पारिवारिक

जीवन दृष्टि प्रकाश में आती है वह पारिवारिक जीवन में सामंजस्य की है, राजेन्द्र यादव की भाँति उसके प्रति अस्वीकृति की नहीं है।

मानसिक द्वन्द्व का दूसरा रूप 'कील' कहानी में प्रदर्शित किया गया है। जहाँ मोना सम्पन्न बाप की छब्बीस वर्षीया अविवाहित बेटी है। वह इस अन्तर्द्वन्द्व में घुटती जा रही है कि उसके डैडी उसकी सेवा टहल में प्रसन्न रहते हैं और उसका विवाह टालते जाते हैं। उसके मन में सदैव माँ के वचन सालते रहते हैं--- लड़की तो एक ऐसा फूल है जो कि अपनी डाल पर लगे- लगे मुरझा जाता है। अगर उसे तोड़ कर किसी के कोट पर लगा दिया जाय तो उसकी ताजगी खत्म होने में नहीं आती---' स्पष्ट है कि लेखक उपयुक्त आयु में बच्चों के प्रति कर्तव्यों का पालन करना भी माता-पिता का दायित्व मानता है। परिवार के प्रति या पारिवारिक जीवन के वांछनीय विकास के प्रति लेखक आस्थावान कहा जा सकता है। माँ के माध्यम से वह यह कहना चाहता है कि माता-पिता का दायित्व है कि वे परिवार के निजी स्वार्थ को बलि चढ़ाकर भी युवा-पीढ़ी के पारिवारिक जीवन की संरचना में सहायक हों। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मोना एक सामाजिक मर्यादा में रह कर अपने विवाह की स्वीकृति अपने पिता को नहीं बता पाती परन्तु मन ही मन मुँह पर उग आयी कील की भाँति ऐसी सामाजिक मर्यादाओं का समर्थन नहीं करना चाहती। अत: लक्ष्य कर लेना आवश्यक है कि अपने विवाह का निर्णय माता-पिता की रुचि पर केवल विवशता में ही छोड़ती है अन्यथा उसमें अपनी पूर्ण स्वतंत्रता चाहती है। इससे महीपसिंह की पारिवारिक जीवन दृष्टि का संतुलित और वांछनीय रूप

प्रकाश में आता है।

महीप सिंह की अधिकांश कहानियों में मानवीय संवेदना का आघात अत्यन्त जटिल व गहरा है। इसी कारण इनकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक सत्य से टकराती हुई भी सामाजिक मर्यादा में पल्लवित होती हैं। `ठंडक`, `एक लड़की शोभा` भी इसी मानसिक स्थिति को उजागर करती है। इस प्रकार महीप सिंह ने कहानियों में व्यक्ति को परिवेश से सम्पृक्त करके पारिवारिक जीवन-मूल्यों को सच्चे अर्थों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

अनेक कहानियों में आज के समाज में व्याप्त कृत्रिम प्रेम का प्रदर्शन मिलता है, जहाँ नर-नारी एक के बाद एक प्रेमी बदलते दिखाये गये हैं। `ब्लाटिंग पेपर`, `गंध` कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। इससे संकेत मिलता है कि आलोच्य काल के परिवेश में व्याप्त सम्बंधों को वे चित्रित करने का प्रयास करते हैं, किन्तु मन ही मन एक सीमा तक परंपरागत आदर्शों की लालसा भी छोड़ नहीं पाते। `ब्लाटिंग पेपर` की प्रीती स्थिर पारिवारिक सम्बंधों में बंध नहीं पाती, किन्तु इस तथ्य में स्वच्छन्द मनोवृत्ति के स्थान पर उस असफलता के प्रति गहरी संवेदना उसमें है, जो लेखक की पारिवारिक जीवन के सुरक्षित अपनाव या लगाव को प्रकारान्तर से रूपायित करने की आकांक्षिणी है।

पारिवारिक सम्बंधों का बिखराव भी `सन्नाटा` जैसी कहानियों में मिलता है तो दूसरी ओर `घिरे हुए क्षण` कहानी का दिलीप, पत्नी के अन्य पुरुषों से सम्बंध देखकर अपने मन के अलगाव को विस्मृत कर सहज

जीवन-यापन करना चाहता है । यह स्थिति भी उपर्युक्त सन्तुलित जीवन दृष्टि का ही द्योतन करती है । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसी विघटन की ओर उन्मुख स्थितियाँ उनकी कहानियों में मिलती अवश्य हैं, लेकिन कहीं न कहीं वे ऐसा अहसास भी कराती हैं कि यह वांछनीय नहीं है । उनकी जीवन दृष्टि में पारिवारिक जीवन की सूत्रबद्धता का समर्थन उनके निम्नलिखित वक्तव्य से भी हो जाता है ।

'---किन्हीं क्षणों में हर व्यक्ति को अकेलेपन की तीव्र अनुभूति होती है । मेरा स्वभाव सामाजिक है, परन्तु इस सामाजिक स्वभाव के कारण बने विविध सम्बंधों का खोखलापन भी मेरे सामने बहुत साफ है । गर्मजोशी से मिलते हुए बहुत से हाथों और चेहरों पर बिखरी हुई मोहक मुस्कराहटों के पीछे छिपी तुच्छता और कुटिलता भी मुझे नजर आती रहती है। परन्तु कई बार सम्बन्धों के झूठ को जान कर भी सम्बंधों से कट कर जीना बहुत दूभर लगता है । इस सन्दर्भ में मुझे अपनी ही एक कहानी 'उजाले के उल्लू' याद आती है ।'[12]

उपर्युक्त वक्तव्य से स्पष्ट है कि वे नितान्त वैयक्तिकता स्वच्छन्दता और उन्मुक्त यौन-सम्बंधों को सामाजिक दृष्टि से अनुचित मानते हैं । जैसा कि हम लक्ष्य कर चुके हैं कि ये तथ्य पारिवारिक जीवन में विघटन और असामंजस्य के लिए आज सबसे अधिक उत्तरदायी हैं, अत: डॉ0 महीपसिंह की पारिवारिक जीवन दृष्टि वांछनीय जीवन-मूल्यों और सामाजिक-नैतिकता के अनुरूप ही सिद्ध होती है । महीप सिंह की कुछ कहानियों में आर्थिक स्थितियों से आक्रान्त ऐसी नारियाँ भी हैं जो एक ओर अपने काम-

सम्बंध अन्यत्र स्थापित करती हैं तो दूसरी ओर अपनी युवा बेटियों को सोसाइटी गर्ल बना कर एक सीमा तक उनके यौवन का सौदा करती हैं। 'काला बाप- गोरा बाप' इसी यथार्थ को उजागर करती है। इस सम्बंध में लेखक का मानना है कि सेक्स का प्रदर्शन प्राचीन काल से हो रहा है तथा अनेक देशों में इसके स्वार्थ प्रयोग भी मिलते हैं। हमारे देश में भी अब यही स्वार्थप्रवृत्ति अप्रत्यक्ष रूप से या समझौते के रूप में दृष्टिगोचर होती है'---- मुझे लगता है कि सेक्स को किन्हीं स्थितियों में, किन्हीं लाभों की पूर्ति के लिए बहुत भौतिक ढंग से इस्तेमाल करने की स्थितियाँ हमारे महानगर और व्यावसायिक तंत्रों में तेजी से आ रही हैं। मुझे थोड़ा विचित्र तब लगता है, जब वैयक्तिक सम्बंधों में भी इसे आनन्द की जगह इस्तेमाल का साधन समझ लिया जाता है ---'[13] अत: स्पष्ट है कि लेखक की दृष्टि मूलत: पारिवारिक चेतना की ओर ही है। वे यथार्थता को प्रकाश में लाकर भी उक्त मूल्यवादी चेतना से विरत नहीं दिखायी पड़ते। अत: वैयक्तिकता व स्वतंत्रता के साथ-साथ वे परिवार के आदर्शों, मूल्यों को भी महत्व देना चाहते हैं 'उलझन' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इसके बिना व्यक्ति, परिवार अथवा समाज का अस्तित्व स्थिर नहीं रह पाता। इसी कारण महीप सिंह की कहानियाँ विविध जीवन सत्यों की अनुभूति-मूलक ऐसी विवृत्तियाँ कही जा सकती हैं जिसमें समाज के विकृत यथार्थ का चित्रण करके भी उसे नियतिवादी परिणति प्रदान करने की अपेक्षा उसके माध्यम से मनुष्य के अन्त:करण की मूल्यवादी प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति मिली है।

6. <u>दीप्ति खंडेलवाल :</u>

परिवार के बीच नर-नारी के सम्बंधों के अनेक विध पक्षों को

लेकर लिखी गयी कहानियों में से दीप्ति खंडेलवाल की कहानियों ने अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त की है। इनकी अधिकांशत: कहानियाँ 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई हैं। समय-समय पर प्रकाशित 'वह तीसरा', 'नारी मन', 'औरत और नाते', 'दो पल की छाँव', 'कड़वे सच' कहानी संग्रह भी उल्लेखनीय हैं।

दीप्ति खंडेलवाल ने परिवेश से सम्पृक्त होकर आत्मीयता पूर्ण क्षणों का अनुभव ही अपनी कहानियों द्वारा कराया है। इनमें एक ओर पति-पत्नी के सम्बंधों में विघटन की संवेदना है तो दूसरी ओर आर्थिक संकट से जूझते हुए मनुष्य की विवशता प्रकाशित हुई है। दीप्ति खंडेलवाल प्रत्येक व्यक्ति के दृष्टिकोण व विश्लेषण को उसी प्रकार भिन्न मानती हैं जिस प्रकार पंचतत्वों से निर्मित हुए व्यक्तियों की रचना भी एक जैसी होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न होती है। इस भिन्नता का कारण वे व्यक्ति के दृष्टिकोण अथवा बदलते मानसिक जगत को मानती हैं। उनका विचार है कि--- प्रकृति प्रदत्त उनके अंगों में भिन्नता नहीं होती, चेतना प्रदत्त उनके मानस भिन्न होते हैं। संवेदना की भूमि पर भी वे अलग-अलग खड़े होते हैं। ~~संवेदना के~~ स्थितियों की क्रिया एवं प्रतिक्रिया में भी। उदाहरणार्थ, मानव मन की एक कोमलतम तथा प्रबलतम संवेदना या चेतना, प्रेम होता है। अनुभूति के स्तर पर प्रेम नारी और पुरुष में एक जैसा स्पन्दित हो भी ले किन्तु अपनी क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं में अधिकार बनता है, नारी में समर्पण----'[14]

इस दृष्टिकोण को सामने रख दीप्ति खंडेलवाल ने अनेक प्रेम सम्बंधी कहानियाँ विभिन्न दृष्टिकोणों से लिखी हैं। इनमें 'शेष-अशेष',

तथा 'मोह' कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । प्रेम के बनते- बिगड़ते, टूटते जुड़ते सूत्रों से उन्होंने नारी के अन्त:करण को पकड़ने का प्रयत्न किया है । पति-पत्नी का सम्बंध आज कितनी निर्ममता से टूट रहा है । इसे 'दाखिल' कहानी का मर्म बनाया गया है । नारी एक रसता से ऊब बने लगती है उसका अस्तित्व वहाँ सीढ़ियों से अधिक कुछ नहीं रह जाता । जहाँ सीढ़ियाँ मात्र सीढ़ियाँ ही होती हैं जिस पर व्यक्ति उतरते और चढ़ते रहते हैं । इनकी कहानियों की नारी दाम्पत्य सम्बंधों के परंपरागत मूल्यों में विश्वास नहीं रखती । 'ये भी कोई गीत है' कहानी में पुरुषों के प्रति समर्पण तथा वैवाहिक जीवन की एकात्मता को पूर्णतया अस्वीकारा गया है---क्या है । यह एकात्मता, समर्पण, विश्वास--- ? देह के कम्पन से आत्मा की सिहरन तक थरथराता स्पन्दन, जो कभी भावना बनता है, कभी कर्तव्य--- लेकिन शायद प्रेम अपनी जगह रहता है, जिन्दगी अपनी जगह और इन दोनों के बीच यह स्पन्दन अपनी जगह तलाशते रह जाते हैं।'[15]

इस कारण 'देह की सीता' कहानी में शालिनी और रंजीत अपने-अपने इतर सम्बंध रखते हुए 'माइन्ड न करने का कल्चर' अपनाते हैं । उनकी विचारधारा 'सन्धिपत्र' कहानी में अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है । सोमा अपने पति से कहती है '---- मेरे एक मात्र पुरुष तुम नहीं हो रोहित, लेकिन शायद---- शायद 'मेरे पुरुष' तुम्हीं हो ---' यही स्थिति उसके बारे में पति की है । अत: स्पष्ट है कि दीप्ति खंडेलवाल यह नहीं मानतीं कि पति-पत्नी सम्बंधों का शाश्वत रूप ही विवाह का अर्थ बनता रहे । उनकी कहानियों में बदलते जीवन व परिवेश के अनुसार विवाह व प्रेम की

परिभाषा भी बदल चुकी है। वे प्रेम या विवाह को एक बन्धन न मान कर मनोरंजन या शारीरिक तृप्ति तक आधारित मानती हैं। 'आत्मघात' कहानी की रंजीता तथा मृणालिनी भी इसी स्थिति से आक्रान्त कही जा सकती हैं।

दीप्ति खंडेलवाल की कहानियों में पारिवारिक चेतना का अभाव या दूसरे पहलू की पारिवारिक चेतना कही जा सकती है। यह ऐसी चेतना है जिसमें पति-पत्नी दोनों ही इतर सम्बंध रखते हैं तथा किसी में किसी के प्रति विरोध नहीं होता। परिवार का वह पक्ष जिसमें परिवार की नीतियों पर कोई प्रभाव न पड़े, कलह न हो, यह चेतना उस स्तर की पारिवारिक चेतना है। इसमें दाम्पत्य सूत्र एक दंपति के मध्य न रहकर कई व्यक्तियों के मध्य रहता है। इस स्थिति का चित्रण 'देह की सीता' कहानी से स्पष्ट है'--- शालिनी और रंजीत ने कभी स्पष्ट न कहा किन्तु एक अनकहा सा समझौता उनके बीच था। वे दोनों ही सेक्स को शरीर की माँग मानते थे, प्यार को मन की। दोनों माँग एक ही 'सोर्स' से तृप्त हों, ऐसा आवश्यक तो नहीं और फिर इस सभ्य युग में रूपसी पत्नी को 'डांस फ्लोर' पर दूसरे पुरुष की बाँहों में बँधी देखकर पति की आँखों में विजय उभरती है, पराजय नहीं। और पत्नी ?----- पति की बाँहों में बँधी दूसरी नारी को 'माइन्ड' न करने का 'कल्चर्ड एटीच्यूड' गर्व से पेश करती है। पति-पत्नी एक दूसरे के व्यक्तिगत सुखों के ऐसे क्षणों को 'माइन्ड' करें, यह आज के सुसंस्कृत युग की बात नहीं, कल के पिछड़े युग की बात है।'[16] यह एक प्रकार से विदेशी सभ्यता या भारतीय

परिवेश में काम सम्बंधों की कही जा सकती है। इस चेतना से उनकी कहानियों में पर-पुरुष एक आवश्यक सा व्यक्ति तत्व बन गया है। इस तीसरे व्यक्ति के अस्तित्व के विषय में उन्होंने 'वह तीसरा' कहानी संग्रह की भूमिका में कहा है--- यह 'वह तीसरा' कभी सूक्ष्म स्तर पर 'अहम्' होता है, कभी-'अविश्वास' कभी 'अस्वीकार'---- कभी स्थूल स्तर पर यह 'मूल' की भूख' भी होता है, कभी जड़ताओं का प्रेत---कभी 'कोई जमीन नहीं' का निर्मम यथार्थ----- और कभी 'वह' का 'वह' जो अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद भी न होश से जाग पाता है और न चैन से सो पाता है----- वह जैसे निरन्तर लड़ता रहता है अपने आप से एक लड़ाई----हार वह मानता नहीं, जीतना उसे आता नहीं ~~अथ~~' । 'एक पारो पुरबैया' कहानी में तीसरे व्यक्ति की परिणति ही चतुर्थ व्यक्ति के प्रेम में होने लगती है। 'आवर्त' तथा 'तनाव' कहानियाँ भी इसी स्थिति का द्योतन करती हैं। यहाँ तक कि उन्होंने शारीरिक तृप्ति को मानसिक तृप्ति भी माना है तथा कहा है कि आवश्यक नहीं है कि इसकी पूर्ण तृप्ति केवल पति से ही हो। अतृप्ति की अवस्था में अनेक विकृतियों का जन्म होता है। 'आधार' कहानी के अविनाश बाबू उसी विकृति का परिणाम हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि दीप्ति खंडेलवाल अपनी कहानियों में पारिवारिक चेतना को पूर्ण रूप से या सामाजिक मान्यता प्राप्त रूप से भले ही न ला सकी हों परन्तु यह ऐसी पारिवारिक चेतना अवश्य कही जा सकती है जहाँ परिवार के सदस्यों को उसी प्रकार की स्थितियों में रहने पर प्रसन्नता रहती है। विरोध न होकर परिवार मधुर व सुखद स्थितियों वाला प्रतीत होता है। इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण भी माना जा सकता है कि जब व्यक्ति काम सम्बंधों के प्रति अतृप्त ~~होने~~ रहता है तब

उसका मनोबल घटता है वह कुंठाओं को जन्म देता है । दूसरी ओर उन्मुक्त काम सम्बंधों में उक्त वस्तुस्थिति नहीं रहती । यह पारिवारिक चेतना भले ही पाश्चात्य पद्धति पर आधारित कही जाय परन्तु इतना अवश्य है कि परिवार में इस दृष्टिकोण का अपना महत्व व स्थान है जिसका कम या अधिक होना कभी-कभी व्यक्ति के व्यक्ति तत्व को उजागर या निकृष्ट भी बना देता है । दीप्ति खंडेलवाल की कुछ कहानियों में परम्परागत परिवार के प्रति आस्था मिलती है यथा- 'क्वार पर' कहानी में बहू अपनी सास को अपने पास बुलाना चाहती है लेकिन यह चेतना उनकी अधिकांश कहानियों में नहीं है । वे पति-पत्नी के मध्य तीसरे व चौथे व्यक्ति के अस्तित्व को पूर्ण रूप से स्वीकार करती हैं । उनके विचार से पति-पत्नी जीवन क्षेत्र के कुछ भाग को ही साथी के रूप में निभा सकते हैं । वे विवाह को एक बन्धन न मानकर शारीरिक आवश्यकता पूर्ति का एक माध्यम मात्र मानती हैं । अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है इनकी कहानियों में पारिवारिक जीवन का व्यापक चित्रण तो अवश्य मिलता है किन्तु यह चित्रण किसी संतुलित पारिवारिक जीवनदृष्टि से प्रेरित नहीं कहा जा सकता । उन्मुक्त काम सम्बन्ध किस प्रकार परिवारों को तोड़ते हैं ।यह कहानियों में दिखाकर वे उनकी अवश्यम्भाविता को प्राय: मानती हैं । इस अवश्यम्भाविता का स्वाभाविक परिणाम है संयुक्त परिवारों ही नहीं अपितु एकाकी परिवारों के टूटने की सम्भावना ।

५. <u>ज्ञानरंजन :</u>

साठोत्तर कहानियों में पारिवारिक जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति करने वाले कहानीकारों में ज्ञानरंजन का एक महत्वपूर्ण स्थान है । इन्होंने अपनी कहानियों में जीवन को निकट से परख कर अनेक विसंगतियों को

रूपायित किया है। व्यक्ति और परिवेश को केन्द्र बना कर समसामयिक बोध की अभिव्यक्ति उनकी कहानियों में हुई है। यही कारण है कि एक ओर इनकी कहानियों में टूटते संयुक्त परिवार का गहरा अवसाद है तो दूसरी ओर नैतिकता- अनैतिकता का द्वन्द्व अपने परिवेश के यथार्थ को रूपाकार देता हुआ चित्रित हुआ है। सामाजिक सोद्देश्यता का निर्वाह करने वाली प्रमुख कहानियाँ 'पेंस के इधर और उधर' (1968) तथा 'यात्रा' (1971) कहानी संग्रहों में संकलित हैं। इनकी कहानियों में कथ्य के अनुभव की संश्लिष्टता तथा परिवेश जन्य समस्याओं के मध्य जीने की आकांक्षा की अभिव्यक्ति हुई है।

परिवार में व्यक्ति आज किस प्रकार अकेला व अजनबी बनता जा रहा है। यह 'शेष होते हुए' कहानी में रूपायित हुआ है जहाँ माँ- बाप, भाई-बहन, एक दूसरे से पृथक होते जा रहे हैं। इसे वैयक्तिकता के अत्यधिक विकास के परिणाम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'कलह' कहानी में भी माँ परम्परागत मान्यताओं के प्रति आस्थावान रहकर तथा घर की मान-मर्यादा का उल्लंघन न कर पवित्र सामाजिक समझौते को स्वीकारती है, जबकि नयी पीढ़ी में उसके प्रति विद्रोह की भावना है। वे पिता को सुधारना चाहते हैं, जिससे माँ की स्थिति अच्छी बन सके और परिवार की कलहपूर्ण स्थितियाँ सदा के लिए समाप्त हो जाएँ। अत: इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि एक ही परिवार में नयी और पुरानी दोनों पीढ़ियाँ अपने- अपने ढंग से पारिवारिक सामंजस्य को बनाये रखना चाहती हैं। किन्तु 'पिता' कहानी में इस प्रयास के बावजूद भी पुरानी पीढ़ी की आग्रही मनोवृत्ति के दुष्परिणाम को इंगित किया गया है। इसमें पिता की स्थिति घर में रहते हुए भी निर्वासित जैसी हो जाती है। इसमें परम्परागत आस्थाओं के प्रति घृणा, उपेक्षा का भाव इतना नहीं है वरन् नयी पीढ़ी उसके समक्ष

अपने को दयनीय और कुंठित समझती है। पिता ऐसे व्यक्ति हैं, जो जीवन की अनेक आधुनिक सुविधाओं से चिढ़ते हैं, झल्लाते हैं, अपने को उससे असम्पृक्त दिखाते हैं तथा सभी का निषेध करते हैं। इस कारण नयी पीढ़ी के पुत्र तेजी से पिता के विरोधी होते जा रहे हैं। अत: उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि जीवन की यथार्थता को प्रस्तुत करके भी ज्ञानरंजन विघटनकारी जीवन दृष्टि के समर्थक नहीं कहे जा सकते। इन कहानियों में उन जीवन पक्षों का सूक्ष्म विश्लेषण है जो पारिवारिक जीवन के बिखराव के लिए उत्तरदायी हैं। लेखक ने वैयक्तिकता, पीढ़ी का अन्तराल, और उससे लक्षित आग्रही मनोवृत्ति के दुष्परिणामों के साथ-साथ जीवन के यथार्थ- बोध को देकर मानों अपनी मूल्यवादी जीवन दृष्टि को सांकेतित करना चाहा है। यह अवश्य है कि उनकी कहानियों में उक्त दृष्टि की सोद्देश्यता नहीं झलकती जो उनके शिल्प के पैनेपन को द्योतित करती है।

इनकी कहानियों में मूल्य- विघटन का असन्तोषजनक परिवेश व स्थितियों का संघर्ष मार्मिक रूप से चित्रित हुआ है। 'फेंस के इधर और उधर' कहानी में सामाजिक परिवेश का चित्रण प्रतीक रूप में किया है। फेंस के एक ओर पुराने संस्कारों वाला परिवार है तो दूसरी ओर नये संस्कार वाला। दोनों परिवारों में अजनबीपन की अनुभूतियों को संश्लिष्ट बना कर अभिव्यक्त किया गया है। एक ओर नये संस्कारों से अभिभूत परिवार समाज का कोई भय स्वीकार नहीं करता तो दूसरा परम्परागत संस्कार वाला परिवार समाज का भय सदैव मानता है। वह अपने सामने वाले परिवार की स्वतंत्रता, बदलते संस्कारों के प्रति आक्रोश तथा भय रहित होने की आलोचना करता है। एक ओर पिता समस्त सामाजिक परिवेश की आलोचना करते हैं

तो दूसरी ओर माँ नये-रीति-रिवाज व बदलते संस्कारों की आलोचना करती है। इस कहानी के माध्यम से यांत्रिक सभ्यता के प्रत्यक्ष प्रभाव के साथ-साथ मानवीय विघटन को दिखाया है जहाँ फेंस का प्रतीक केवल दो परिवारों की सामाजिक भावना का अलगाव ही नहीं वरन् मानवीय सम्बंधों तथा संवेदनाओं का भी अलगाव है। अत: इस कहानी को भी जीवनदृष्टि पूर्व विवेचित कहानियों की भाँति ही है।

बदलते हुए परिवेश के अनुरूप सेक्स के नैतिक- अनैतिक द्वन्द्वों के माध्यम से वे एक सीमा तक व्यक्ति की स्वच्छन्दता को दिखाते हैं, जहाँ काम तुष्टि के अभाव से त्रस्त व्यक्ति अपने आसपास के परिवेश से उसकी सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। 'छलांग', 'दिवास्वप्नी' कहानियों की नारियाँ ऐसी हैं जिनके प्रति वृद्ध अथवा असमर्थ होने के कारण औरतों में रुचि नहीं रखते इस कारण ये नारियाँ अतृप्त काम वासना की तुष्टि के लिए परिवेश में इधर- उधर भटकती रहती हैं, किन्तु वे पारिवारिक व्यवस्था को न तो छोड़ती हैं और न विद्रोह करती हैं। इसे वैयक्तिक काम की उद्दामता कहा जा सकता है। पारिवारिक जीवन दृष्टि के सन्दर्भ में विचार किया जाय तो प्रथम उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनमें ज्ञानरंजन पारिवारिक जीवन की विकृतियों की आधार-भूमियों को एक सीमा तक प्रकाशित करते हैं। यहाँ वे पारिवारिक दायित्वहीन स्वतंत्र जीवन दृष्टि के समर्थक कहे जा सकते हैं किन्तु फिर भी वे परिवारों को तोड़ते नहीं हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि इनमें कामजन्य यथार्थता को प्रकाशित किया गया है जो पारिवारिक जीवन की नैतिकता को प्रभावित कर सकती है। पारिवारिक जीवन दृष्टि इनके माध्यम से प्रकाश में नहीं आती। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि ज्ञानरंजन की ऐसी कहानियाँ पारिवारिक

चेतना के बदलते सन्दर्भों को लेकर चली हैं। इन्होंने बदलते परिवेश में परिवार की क्या स्थिति बनती जा रही है को चित्रित करने का प्रयास किया है। समग्रतया मूल्यांकन के आधार पर पूर्व विवेचित तथ्यों के प्रकाश में वे पारिवारिक जीवन के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए दिखायी पड़ते हैं। सुरेश सेठ का कथन है--- निजी पीड़ा, पराजय, ऊब, हताशा, निराशा, आत्महत्या, भीड़ में अकेलापन , पारिवारिक विघटन, प्रेम और यौन सम्बंधों का मुर्दा हो जाना और संक्रान्त काल में मिसफिट होते हुए युवावर्ग की मानसिकता ज्ञान की कहानियों का कुल बोध यही है। लेखक की उपलब्धि यह है कि उसने ईमानदारी के साथ अपने इस बोध का सामना करने का प्रयास किया है, उसने इसे अन्य की तरह सेक्स के शार्टकट में नहीं उलझाया--- ।[17]

अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि पारिवारिक जीवन दृष्टि के सन्दर्भ में ज्ञानरंजन की कहानियाँ दो प्रकार की हैं- एक तो वे जो पारिवारिक जीवन के वांछनीय पक्ष को स्वीकार करती हुई विकृतियों के यथार्थ का भी बोध कराती हैं और संतुलित जीवन दृष्टि की परिचायक कही जा सकती हैं। दूसरे प्रकार की कहानियाँ वे हैं जो पारिवारिक जीवन की विकृतियों को उजागर करती हुई उनके विघटन के कारणों का सन्धान करती हैं। इस सन्धान में कहीं- कहीं वे वैयक्तिकता और स्वच्छन्द यौनध चेतना का समर्थन करती हुई भी प्रतीत होती हैं किन्तु सर्वत्र यह स्थिति नहीं है। अत: ऐसी कहानियों में वे एक सीमा तक ही पारिवारिक जीवन दृष्टि से सम्बद्ध कहे जा सकते हैं । परिवर्तित जीवन मूल्यों का ऐसी कहानी में रूपायन जहाँ अधिक यथार्थपरक हो गया है, वहाँ पारिवारिक विघटन के समर्थन की

प्रतीत होती हैं, किन्तु लेखिका का विनम्र अनुरोध है कि वस्तुस्थिति यह नहीं है। अत: सुरेश सेठ के उपर्युक्त दृष्टिकोण से भी अंशत: ही सहमत हुआ जा सकता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्याय के विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानी का साठोत्तर काल कथ्य और शिल्प के चले आने वाले नये मोड़ को और भी प्रकर्ष रूप में रखता हुआ तद्गत कुछ नवीन पक्षों का भी उद्घाटन करता है। यही कारण है कि कहानीकारों की एक ऐसी मिश्रित पीढ़ी इन दिनों मिलती है जिन्हें विवेचनगत सुविधा के विचार से तीन कोटियों में रखा जा सकता है -

प्रथम- वे कहानीकार हैं जो सन् साठ के पूर्व में विशेष चर्चित रहे, परन्तु युग व परिवेश के अनुरूप उनकी रचनाओं में परिवर्तन आता गया और उनकी नयी रचनाएँ साठोत्तर काल की चेतना से पूर्ण सम्पृक्त कही जा सकती हैं। यथा- मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, अमरकान्त, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती, ~~विष्णु-अमरकान्त, भीष्म-साहनी,-कमलेश्वर,-कृष्णा-यादव~~ विष्णु प्रभाकर आदि कहानीकार।

द्वितीयत:- वे कहानीकार जो सन साठ के पहले भी लिखते थे परन्तु उनके कहानीकार के व्यक्तित्व का वास्तविक विकास साठोत्तर काल में ही दृष्टिगोचर होता है। यथा- उषा प्रियम्वदा, मन्नू भंडारी, महीप सिंह, शिवानी, रजनी पणिकर, दूधनाथ सिंह, कृष्ण बलदेव वैद, शरद जोशी, पानू खोलिया आदि।

तृतीयत:- वे नये कहानीकार हैं जिनका लेखन सम्पूर्णतया साठोत्तर काल का है। यथा- दीप्ति खंडेलवाल, ज्ञानरंजन, गिरिराजकिशोर, हिमांशु जोशी, कुलभूषण, मनहर चौहान, वेदराही, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, सुधा अरोड़ा, अन्विता अग्रवाल आदि।

शोध प्रबंध की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्याय में केवल प्रमुख कहानीकारों तथा उनकी कहानियों में अभिव्यक्त पारिवारिक जीवन दृष्टि पर विचार किया गया है। जीवन दृष्टि के विवेचन को भी दो प्रकार से उभारा गया है। प्रथम - केवल कहानियों में अंकित तथ्यों से प्राप्त सूत्रों द्वारा पारिवारिक जीवन दृष्टि का रूप, दूसरा- उपर्युक्त जीवन दृष्टि के रूप के साथ-साथ कहानीकारों द्वारा स्वयं यत्र-तत्र साक्षात्कारों, भूमिकाओं आदि से प्राप्त जीवन दृष्टि के सूत्रों के आकलन से प्राप्त पारिवारिक जीवन दृष्टि का रूप।

पारिवारिक जीवन दृष्टि के संदर्भ में साठोत्तर कहानियों को देखने पर ज्ञात होता है कि कुछ कहानीकार पारिवारिक चेतना से पूर्ण सम्पृक्त हैं यथा- महीप सिंह, उषा प्रियम्वदा तो कुछ कहानीकार पूर्ण रूप से असम्पृक्त हैं यथा- राजेन्द्र यादव, दीप्ति खंडेलवाल। तीसरे कहानीकार ऐसे हैं जो दोनों स्थितियों में समन्वय रखना चाहते हैं उनकी कुछ कहानियाँ पारिवारिक सामंजस्य की चेतना का समर्थन या उसकी अभिव्यंजना करती हैं तो कुछ पारिवारिक चेतना से दूर जा पड़ी हैं। मन्नू भंडारी, ज्ञानरंजन, मोहन राकेश की अनेक कहानियाँ इन द्विविधा चेतना रूपों को प्रकाश में लाती हैं।

अत: समग्रतया मूल्यांकन द्वारा कहा जा सकता है कि साठोत्तर

काल में कहानीकारों की पारिवारिक जीवन दृष्टि भिन्न-भिन्न स्थितियों में रही है। यही कारण है कि इस काल की कहानियों में परिवार के अनेक बदलते स्वरूप दिखाई पड़ रहे हैं। इन कहानियों में सर्वाधिक मात्रा में जो जीवन का रूप प्रकाश में आता है वह पारिवारिक जीवन की विकृतियों तथा उनकी यथार्थता का है। प्राय: सभी कहानीकार नगरों के जीवन से अधिक सम्पृक्त हैं। उनके सामने परिवेश भी लगभग आधुनिकता की मानसिकता का रहा है। इसके कारण परंपरा और नयी भौतिकवादी तथा साथ ही पाश्चात्य जीवन दृष्टि का जो निरन्तर-व्यापी द्वन्द्व आज के मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग में विद्यमान है उसका आकलन उनके द्वारा अंकित पारिवारिक जीवन के विविध रूपों में दिखायी पड़ता है। अत: ऐसी कहानियों में जीवन-दृष्टि के स्थान पर जीवन की विविध पक्षीय विकृतियाँ तथा नयी आशा-आकांक्षाओं का यथार्थ रूपायन देखा जा सकता है। अत: इसमें सन्देह नहीं कि ये कहानियाँ आधुनिक जीवन के विविध रूपों से अवश्य अनुप्राणित हैं भले ही उनके आधार पर किसी पारिवारिक जीवन दृष्टि को परिलक्षित न किया जा सकता हो।

--

सन्दर्भ- संकेत
%%%%%%%%%%

1. मोहन राकेश : भूमिका, परिवेश संग्रह
2. '' : भूमिका, नयेबादल, कहानी संग्रह
3. राजेन्द्र यादव : कहानी स्वरुप और संवेदना, पृष्ठ-214
4. '' : भूमिका, खेल खिलौने, कहानी संग्रह
5. '' : कहानी स्वरुप और संवेदना, पृ. 217
6. मन्नू भंडारी : मन्नू जी के तमाम रंग, त्रिशंकु, कहानी संग्रह
7. उपरिवत् :
8. मन्नू भंडारी : धर्मयुग, 2 अप्रैल से 8 अप्रैल 1978, पृष्ठ-51
9. '' : मन्नू जी के तमाम रंग, त्रिशंकु कहानी संग्रह
10. उपरिवत् :
11. महीप सिंह : सीधी रेखाओं के वृत्त, धर्मयुग 24 मई 1970, पृ. 11
12. '' : साक्षात्कार, इक्यावन कहानियाँ
13. उपरिवत् : पृष्ठ-14
14. दीप्ति खंडेलवाल : दो शब्द, नारी मन कहानी संग्रह
15. '' : ये भी कोई गीत है, कड़वे सच, कहानी संग्रह
16. '' : देह की सीता, कड़वे सच कहानी संग्रह
17. सुरेश सेठ : नयी कहानी, पहला अंक-जून 1977, पृष्ठ-257